"विनायकः बुध्दिमंता"

(श्री सनातन–वाणी प्रवचन माला की प्रथम 'धारा')

गोबिन्द हरे। हरि ओम। नारायण हरि।।

किसी भी शुभ कार्य को आरम्भ करते समय, हम आराध्य देवों का, ईश्वर का, आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए उनका, आवाह्न, पूजन, बन्दन एवं स्तुति करते हैं। आज, सनातन–बाणी प्रवचन माला का हम आरम्भ करने जा रहे हैं। किसी भी शुभ कार्य का आरम्भ भगवान विनायक की पूजा से होता है। आदि काल से, हमारी यह परम्पराये रही हैं। कि सबसे पहले भगवान विनायक की पूजा करें। कोई भी सद्ग्रन्थ आरम्भ होता है, राम की कथा हो, तुलसी सुना रहे हों, विनायक की पूजा अवश्य होगी।

भगवान गणपति, शिव और पार्वती के पुत्र कहे जाते हैं। ऐसी कथा आती है कि एक बार, भगवान शिव की पत्नी ने, एकान्त के क्षणों में, आटे का एक बालक बनाया, बड़ा सुन्दर बना। शिव पत्नी ने उसको प्राण दे दिये प्राणों की प्रतिष्ठा कर दी, वह जीवन्त हो उठा। उनको वह बालक बहुत प्रिय था। बहुत स्नेह करती थीं वह उससे। एक बार उसको द्वार पर, पहरेपर बिठाकर, वह स्वयं अपने स्नानगृह में थीं। उसे आदेश दे दिया था, कोई भी आये उसे भीतर नहीं आने देना। माता की आज्ञा का, बालक पालन करने लगा। उसी समय महा शिव पधारे। बालक ने उनको भीतर जाने को मना कर दिया ।

बहुत सी कथायें हैं, युद्ध हुये आदि आदि। परन्तु, कथा है कि शंकर ने त्रिशूल से उस बालक का सिर उड़ा दिया। शिव पत्नी को पता चला, तो वे अत्याधिक पीड़ित हो उठी। उन्होंने कहा, "आपने यह क्या कर दिया? मैंने ही इस पुत्र को प्रकट किया है, आप अपने ही पुत्र के हत्यारे हो गये है।"

शंकर ने गणों को चारों ओर भेजा। परन्तु सिर का कहीं पता न चला। शिव ने कहा– उत्तर की ओर मुंह किये, जो तपस्या में है, उत्तरायण है, ऐसे किसी शीश को वे ले आयें। तो कथा आती है, कि ऐरावत का पुत्र, जो कहीं उत्तर की ओर मुंह करके तपस्या कर रहा था, दक्षिण की ओर उसका पृष्ठ भाग था। गण, उसी का सिर काट कर ले आये और उस सिर को ही उन्होंने उस बालक के धड़ के साथ (महाशिव ने) जोड़ दिया। इस प्रकार भगवान विनायक जिनका सिर हाथी का है वे गणपति कहलाये। ज्ञान की अमृतमयी धारायें, जो भी इस धरा पर अवतरित हुई और आज भी जो हमारे पास चारो बेद आदि अमृतमय ग्रन्थ हैं, उन्हे भगवान गणेश ने ही हम तक पहुँचाया है। इन कथाओं के रहस्य में अपने

आपको सींचने के लिए हमें कुछ और गहरे उतरना होगा ।

पहला प्रश्न आपसे पूछना चाहूँगा – कि क्या आप जानते हैं कि आपकी भाषा कौन सी है? क्या आप जानते हैं कि आप किस भाषा में बोलते हैं? आप में से बहुत से उत्तर देंगे कि हमारी हिन्दी ही भाषा है। भारती ही हमारी भाषा है, कोई तमिल बतायेगा, कोई तेलगू, कुछ अंग्रेजी की बात करने लगेंगे, और कुछ उर्दु दां हो जायेंगे। लेकिन मैं फिर भी पूछना चाहूँगा कि मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिल पाया है। आपकी भाषा कौन सी है?

सत्य रुप में एक ही उत्तर आयेगा कि हम प्रकृति के अंग हैं प्रतीकों से हटकर हमारी कोई भाषा नहीं, कोई अभिव्यक्ति नहीं। जीव मात्र कि भाषा, प्रतिकात्मक भाषा ही इसकी भाषा है। चाहे उस भाषा की लिपि कोई भी हो। प्रतीकों के द्धारा ही हम सोचते हैं, समझते हैं, सुनते हैं बतलाते है। इसीलिए, आदि काल से चली आ रही भारतीय संस्कृति की यह महान परम्परा है, वेद हों, श्रुतियां हों, ब्राहम्ण आरण्यक ग्रन्थ हो, उपनिषद हों, पुराणों की कथा आदि, मानस की गीत हो या कृष्ण की कहानी हो– बात, प्रतिकात्मक भाषा में ही कही जाती है। गणपति भी, हमारे अराध्य देव भी, प्रतिकात्मक भाषा में हमें अद्‌भुत अमृतमय उपदेश करते हैं ।

हाथी का सिर नहीं जिसका, हाथी की मस्ती नहीं जिसमें, जो बौद्धिक परिपक्वता से परिपूर्ण नहीं, उसका लक्ष्य कैसा? उसका अभियान कैसा? उसका कार्य कैसा? और उस कार्य की प्राप्ति कैसा? इसीलिए सबसे पहले, हम स्थिति प्रज्ञ, बुद्धि– मतां, भगवान– विनायक की पूजा करते हैं। आप हाथी की मस्ती को तभी तो धारण कर सकते हैं, और तभी तो आप धारण कर पायेंगे, जब आप बौद्धिक परिपक्वता को प्राप्त होंगे ।

आज हम सब कहते हैं कि स्वामी जी, "यह संसार दुखों की खान है।" "नानक दुखिया सब संसार"। आप सबको चिन्तायें सताती हैं। पीड़ा, भय, आतंक, अनिश्चितता के क्षण, इसका दुख, उसकी पीड़ा। थोड़ा सा हम, इसी पर विचार करें, और फिर, भगवान– विनायक को सामने रखें, तो शायद यह बात हमको और अच्छी तरह से समझ में आये। मैं आपको आपके बचपन की, ओर ही एक बार ले चलूँ। याद करें, कि जब पहली बार आपने सायकिल चलाना सीखा था, तो पहली बार, जब सायकिल पर आपने हाथ रखा था तो कितना भय था, कितना डर था, कितना आतंक था, अनिश्चित्ता के क्षण थे। हम ठीक से हैण्डिल पकड़ कर उसको चला भी तो नहीं पाते थे। लगता था उधर ही गिर तो न जाय। जब तक आप सीखते रहें। कितने सर्तक और आतंकित रहे, लेकिन जब सायकिल चलाने में आपको परिपक्वता प्राप्त हो गई, तब कितने शान्त (रिलेक्स) होकर हाथी की मस्ती के साथ, आराम से, सायकिल पर बैठकर चलाने लगे। जो आपके साथ चल रहा था, उससे भी आप बात करने लगे, उसको छेड़ले भी लगे। तीसरे विषय पर बात करने लगे, सड़क पर जो पटरी पर खड़ा दिखा, उसे बुलाने

भी लगे। उसके साथ नमस्ते, अभिवादन भी करने लगे आपको सायकिल चलाने का भय जाता रहा।

जैसे, आपने सायकिल चलाना सीखा था, काश आप इस जीवन रूपी सायकिल को उतनी ही जल्दी, उतनी ही अच्छी तरह से चलाना सीख पाये होते, तो आज यह भय, आतंक ही क्यों होता? भय, अनिश्चित्ता, बौद्धिक– अपरिक्वता का प्रतीक है। हम विनायक को अपने जीवन में उतार नहीं पाये हैं। भगवान गणपति, विनायक हमारी बौद्धिक परिपक्वता को ही हाथी के सर से, हाथी की मस्ती से, प्रतिबिम्बित करते है।

एक छोटा लड़का है, उसके छोटे छोटे खिलौने हैं। छोटा सा उसका संसार है। उसने खिलौनों से ही अपने आप को आइडेनटीफाई (तदरुप) किया हुआ है। अपने आप को वह उन खिलौनों के रूप में ही देखता है। उसकी आइडेन्टीफीकेशन (उसका एक– रुपता) उन खिलौनोके बराबर है। जब भी कोई खिलौना टूटता है, वह लड़का रोने लगता है दुखी हो जाता है, क्यों? क्यों कि वह खिलौना थोड़े ही टूटा– वह लड़का टूट गया है– उसने अपना तादात्म उन खिलौनों के साथ कर रखा है। कल्पना करें, कि वह बालक बड़ा होने लगा है, युवा अवस्था को भी वह पार कर रहा है, उसका विवाह हो गया है, एक बड़ी सुन्दर सुन्दर सुघर सी पत्नी भी उसको प्राप्त हो गई है। ऐसे समय में जब कि बीबी के (अपनी पत्नी, के) पास वह वह खड़ा हुआ है, यदि कोई खिलौना बचपन का टूट जाये तो क्या वह पत्नी के सामने भाँय–भाँय करके रोयेगा? नहीं न। ठीक उसी प्रकार जब तुम इस क्षण– भंगुर जगत के हर खिलौने के लिये रो रहे, हर टूटते खिलौने के साथ टूट रहे हो, हर मिटते रुप के साथ तुम मूर्छित हो रहे हो, मिट रहे हो। तो क्या यह सत्य नहीं है कि समय ने अवश्य तुम्हारी आयु बढ़ायी परन्तु बौद्धिक स्तर नहीं उठ पाया है। तुम विनायक को अपने जीवन में उतार नहीं पाये हो। गणपति अभी भी तुम्हारे लिये अछूता है। तुम जानते नहीं हो भगवान गणेश को ।

दूसरा उदाहरण देते हैं। बाग में, थोड़ा सा आप मेरे साथ आयें। देखिये, सामने छोटे– छोटे पौधे खिल रहे है। छोटे– छोटे पौधे बाग में लगे हैं। हर पौधे को भय है उसे एक माली चाहिये। माली आयेगा नहीं, जोते–बोयेगा नहीं, तो वह पौधे मर न जायेगें। माली सींचे माली जोते, उनकी देख करे, तभी तो पौधे जीवित रह पायेगें, और इन्हीं पौधों के साथ, एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ भी खड़ा हुआ है। क्या इस बरगद को भी मालियों की इन्तजार है? नहीं। क्यों? क्योंकि, इस बरगद ने भीतर जड़े डाल दी हैं। जिन्होंने अपनी आत्मा में, अपने विचारों की जड़े फैला दी, और जो, विचारों के विशाल बरगद हो गये, अब उन्हें संसार मालियों को क्या इन्तजार है? नहीं, उसे मालियों की क्या जरूरत। उसकी जड़ें तो नीचे तक चली गयी हैं। हाँ एक बात और भी अद्रभुत हो गयी है। इस बरगद के पेड़ को, मालियों की जरूरत नहीं। लेकिन मालियों को तो इस

पेड़ की जरूरत है। याद रखो—जब तुम विचारों के बड़े बरगद हो गये हो, गणपति विनायक का सिर तुम्हारा सिर हो गया है, तो संसार मालियों को तुम्हारी जरूरत है— अब तुम मालियों के लिये हताश, प्यासे, नहीं। तुम सदा तृप्त हो। आज हर अतृप्त, आकर तुम्हारे पास, तृप्त होगा। जब तक तुम विचारों के छोटे बचकाने पौधे हो, तुम मालियों के हाथों खेल रहे हो, अतृप्तियों ही खेलेगीं तुमसे। तुम सुखी, शान्त, मस्त, निश्चिन्त कैसे हो पाओगे?

इस विशाल बरगद के साथ जुड़ी, एक और विचार धारा है उसे भी हृदयगम करो। जब गगन बरसता है (मेघ), जहाँ सघन वन होते हैं, जहां घने जगल होते हैं, वहां— वहां बादल, मूसलाधार बरसते हैं, रेगिस्तानों में बूंद नहीं गिरा करती। यदि ईश्वर की कृपा भी उतरेगी, तो विचारों के विशाल बरगद पर, अर्थात् जो बौद्धिक परिपक्वता से पूर्ण हो गये हैं, ईश्वर की कृपा भी उन्हीं पर बरसती है। उन्हीं के कारण छोटे पौधों को भी बूंदे मिल जाया करती हैं। लेकिन गगन बड़े बरगद के लिये ही बरसता है। इसे कभी मत भूलना। इसीलिये सत्संग की हम कल्पना करते हैं कि उस विशाल बरगद को बुलायें, उस की वाणी से वह बूंदे बरसें, तो हम प्यासे, अतृप्त छोटे पौधों में भी कुछ जीवन आये, कुछ रस आये, सुख शान्ति के क्षण हों, प्रभू को जानने और पाने की जिज्ञासा, और प्यास बढ़े, और हमारे भी कदम कुछ सत्य की राह पर चलें। चलो, उस विशाल बरगद को बुलायें और सत्संग करें।

भगवान विनायक—"हाथी की मस्ती"—इसी को ही प्रतिबिम्बित करती है। गणपति की मस्ती हो, तभी किसी कार्य का श्रीगणेश हो, अन्यथा तो वह कार्य ही हमको खा जायेगा।

भगवान गणपति के दोनों ओर रिद्धि और सिद्धि खड़ी हैं। रिद्धि और सिद्धि का अर्थ है (एचीवमेन्ट्स) उपलब्धियाँ/भौतिक, सामाजिक, ऐश्वर्य— वही तो रिद्धियां और सिद्धियां हैं। तो कहा— कि जब मस्तिष्क में, देह में, गणपति वास करें तो तभी मेरे दायें और बायें रिद्धियॉ और सिद्धियाँ हों। कल्पना करें, कि एक छोटा बालक है। उस बालक के हाथ में गलती से एक भरी हुई रिवाल्वर आ गयी है— पिस्तौल। वह बालक जानता नहीं है, कि यह असली है। वह तो उस खिलौना ही समझता है, जब भरी हुयी पिस्तौल बच्चे के हाथ में आती है, घर के सारे लोगों में भय और आतंक होता हैं। जानता नहीं है अबोध है। कहीं अपने को ही गोली मार दे। बच्चे को बोध नहीं है। हर व्यक्ति भय से आतंकित हो उठता है। लेकिन वही भरी हुई पिस्तौल, जब गाँव के थानेदार के हाथ में आती हैं, तो सारा गांव निर्भय होकर, आराम से सो जाता है, सुरक्षा का उचित प्रबन्ध है। पिस्तौल लिये थानेदार घूम रहा है गलियों में। तो पिस्तौल आतंक नहीं। जब बचकाने हाथ में है, तो आतंक है, और जब परिपक्व हाथों में वही रिवाल्वर भरी हुई आती है तो सुख का कारण, निश्चिंत्तता का कारण बन जाती है। रिद्धियों और सिद्धियों को तुम लोडेड रिवाल्वर की तरह जानों। जब वह परिपक्व,

बौद्धिक स्तर, के पास है, प्राणी– मात्र की समर्पित सेवा में वही भौतिकता लगी है, और यही भौतिकता, या धन आदि जब अपरिपक्व हाथों में है, तो भाई भाई में मुकदमा, गोलियां चलती, बिखरते घर उजड़ते परिवार सगे भाई, एक दूसरे के खून के प्यासे। क्यों? क्योंकि, उन्होने रिद्धिया का सिद्धियों का आवाहन तो किया। गणपति को अपने जीवन में उतार न पाये। इसीलिये हर पूजा और भक्ति में, हर भक्त जानता है, कि हे विनायक हे गणपति आप सबसे पहले हमारे पास आयें, हम आप ही का अपनी इस देहरूपी देवालय में आवाहन करें। आप हमारे मस्तिष्क पर, हे बुद्धि– मतां। हे विनायक! पधारें। जिससे ये रिद्धियां, और सिद्धियां कहीं हमारे विनाश न कर जायें। पहले हे गणपति! महाशिव के पुत्र! आप हमारे बौद्धिक जो धरातल है। उस पर आप आसीन हों, तभी ये रिद्धियां और सिद्धियां हमारे दायें व बायें प्रगट हों। विनायक आप ही पहले पधारें, इसलिये सर्वप्रथम मैं आप ही की पूजा करता हूं।

बौद्धिक परिपक्वता, ही हमारे सुखद जीवन का रहस्य है। गणपति का जो मुख मण्डल है वह जीवन को अमृतमय बनाने के लिये हर ओर से उपदेशात्मक है। भगवान विनायक, एक दन्त हैं, अर्थात् एकाग्र, एक लक्ष्य हैं। जिसके जीवन में एकाग्रता नहीं। वह किस गन्तव्य को जायेगा? किस लक्ष्य को प्राप्त होगा?

महाभारत की कथा में, आचार्य द्रोण जब बच्चों को धनु विद्या की परीक्षा ले रहे होते हैं, सिखलाने के उपरान्त। पेड़ पर एक चिड़िया रखी जाती है, लड़को की। सबसे कहा जाता है– कि उसकी आंख को बींधना है, संधान करो। लेकिन सभी निशाना तो लगायें, पर बाण न चलायें, जब तक आचार्य न आदेश दें। सब बाण तानकर खड़े हैं। आचार्य सबसे पहले दुर्योधन से पूछते है, "दुर्योधन तुम्हें क्या दिख रहा है?" "आचार्य! पेड़, पेड़ पर बैठी चिड़िया और उसकी आँख!" फिर कहा–"दुर्योधन! धनुष बाण रख दो। भीम। तुम क्या देखते हो? भीम से पूछा गुरुदेव ने कहा– "गुरुदेव मैं तो दुर्योधन से भी ज्यादा देख रहा हूँ" मुझे पेड़ चिड़िया, तो सब दिख रही है, घर में, रसोई में रखा बढ़िया खाना, वह भी दिख रहा है।" कहा– "भीम। तुम भी धनुष बाण रख दो।" कहा– "अर्जुन तुम क्या देख रहे हो।" अर्जुन ने कहा– गुरुदेव– मुझे सिर्फ काली पुतली ही दिख रही है। कहा– आंख–नहीं दिखती। कहा–"नहीं"। पूछा–"चिड़िया?" "वह भी नहीं दिखती" सिर्फ पुतली देख पाता हुँ। आचार्य ने कहा–बाण चलाओ अर्जुन और बाण चिड़िया की पुतली को बींध गया। लक्ष्य पाया। जो एक दन्त नहीं, जिसके जीवन में लक्ष्य के प्रति एकाग्रता नहीं, वे कभी भी सफलताओं को, उनकी पूर्णता एवं व्यापकता में, प्राप्त नहीं करते। उनकी हर प्राप्ति अपूर्ण, और अतृप्त हुआ करती है। विनायक की मस्ती हो, और हम एक दन्त हों।

महाभारत की कथा है। स्वर्गारोहण को चले हैं– पांचों पाड़व, साथ में द्रौपदी। लड़खड़ाये कदम, सहदेव गया। फिर नकुल भी बर्फ में समा गये। न चल पाये। लड़खड़ाती द्रौपदी कभी अर्जुन का सहारा लेती, कभी भीम का और

फिर वह भी दम तोड़ गयीं, न चल पायीं। अर्जुन भी लड़खड़ाये, और उसी बर्फ में चिरनिद्रा में समाधिरथ हो गये। भीम भी जाता रहा। सिर्फ बढ़ता चला, एक युधिष्ठिर और साथ में एक कुत्ता। कुत्ता क्यों? यहाँ पर भी प्रतिकात्मक भाषा में हमको हमारा ही सत्य दर्शाया गया है। क्यों? क्योंकि हमारी भाषा प्रतिकात्मक भाषा है। प्रतीकों के बिना हम कुछ भी तो ग्रहण नहीं करते। "वह चाँद सी सुन्दर है।" चाँद में तो गड्डे हैं। फिर प्रतिकात्मक भाषा में चांद सा दिखता जो सौंदर्य है, उसकी उपमा दी गई है। तो उपमाओं के बिना हमारी कोई भी तो अभिव्यक्ति नहीं। कुत्ते में एक विशेषता है। वह 'एक–मालिक' का है। यदि वह मालिक को मानता है तो वह मालकिन को भी नहीं मानता, मालिक के स्तर पर। "एक मालिक का कुत्ता" और दूसरी विशेषता कुत्ते में क्या है? कि वह सोते में भी सावधान है। थोड़ी सी आहट मिलते ही, वह अपने मालिक के हित में भौंकने लगता है। अर्थात् जो एक अराध्य का है, और असावधानी में भी जिसके जीवन का लक्ष्य, एक–दन्त नहीं छूट पाता। सदा, सोते–जागते उठते–बैठते वह सदा अपने जीवन के उस लक्ष्य पर आरूढ़ रहता है। वही तो युधिष्ठिर सा स्वर्गारोहण करेगा। इसलिए भक्त, भगवान–विनायक, के एक दन्त श्रीमुख की आत्मविभोर होकर स्तुति करते हैं।

दृष्टि सम है। हाथी की आँख, विषम–भाव को नहीं अधिक देर तक ग्रहण कर पाती। जिसकी दृष्टि सम है, अर्थात् जो किसी में भेदभाव नहीं देखता, वही तो पावन स्वरूप भगवान–विनायक–गणपति का है। दृष्टि सम किसकी होती है।"जो बौद्धिक परिवक्वता को प्राप्त होगा।"

एक उदाहरण दे रहा हूँ आपको। एक कथा सुनाता हूँ आपको। एक जंगल में, जंगली लोग रहते थे। पीढ़ी दर पीढ़ी वे कभी शहर नहीं गये थे। एक बार उन्हीं का वंशज, एक नौजवान ने, सोचा, देखा तो जाय, चलो शहर कैसा होता है! रात को, डरा, सहमा, लुकता, छिपता, वह गया। जब मोहल्ले में प्रवेश पाया तो भौचक्का सा देख रहा है चारों तरफ, घरों में से, खिड़की के शीशों में से, रोशनी छन–छनकर बाहर आ रही है। अज्ञानी था वह। जानता नहीं था। उसने समझा कि यह कांच ही चमक रहे हैं। जो दूर–दूर तक रोशनी फेंक रहे हैं। लाओ, क्यों न हो, मैं एक कांच ही तोड़कर भाग जाऊँ। ऐसा विचार करके वह जंगली उस शीशे को तोड़कर भाग खड़ा हुआ। रात में जब उसने जंगल में देखा तो उस कांच में से कोई रोशनी न दिखी। उसने सोचा या तो मेरे तोड़ने में गलती हो गयी थी। या मैं गलत शीशा तोड़ लाया। इसकी रोशनी जाती रही। अथवा मैं गलत शीशा जल्दबाजी में तोड़ लाया। चलो अब दूसरा तोड़ लावें। ऐसा सोचकर रोजाना एक शीशा तोड़ लाता खिड़की से। लेकिन रात में उस काँच से कुछ भी रोशनी प्रकट न होती। इधर मोहल्ले के लोग भी परेशान हो गये। कौन हमारे खिड़कियों के शीशे तोड़ रहा है? घात लगाकर, उस जंगली को, एक रात

पकड़ लिया और कहा क्यों रे तू हमारी खिड़कियों के शीशे क्यों तोड़ता है? उसने उत्तर दिया कि खिड़कियों के शीशे तो मैं तोड़ता हूँ यह सही बात है। लेकिन मुझको एक बात बताओ, तुम्हारे यहां तो ये चमकते हैं। दूर–दूर तक रोशनी फेंकते हैं, मेरे जंगल में ये क्यों नहीं चमकते हैं? उन्होंने कहा, रे पगल। यहां आओ, मेरे साथ और उन्होंने उसको हर घर कमरों में झांकने को कहा। और कहा यह छत पर जो टंगा बल्ब है। वह चमकता है। उसी की रोशनी है, जो काँच से छन–छन कर बाहर आती है। न कि रोशनी शीशे में से निकलती है।

विनायक की कथा में जो भगवान विनायक का स्वरूप है, वह इस जंगली

की कथा से स्पष्ट होता है कि कमरे में बल्ब जगमगा रहा था और हमारी बौद्धिक अपरिपक्वता, केवल खिड़कियों और दरवाजों तक सीमित थी। हर कमरे में बल्ब वही जगमगा रहा था। हमने सिर्फ खिड़कियों से रिश्तेदारी की दीवारों तक हम सीमित रहे। आत्मा होकर, भगवान नारायण ही, आत्मा रूपी बल्ब ही, हर देह में जगमगा रहा है। हमने सोचा, उसकी आँखों में रोशनी है। हमने जाना, उसके चेहरे पर चमक है। जिस दिन वह बल्ब आत्मा निकल गया। न मुर्दा आँखों में रोशनी थी। न चेहरे पर चमक। उस जंगली की कथा को सुनकर हम सब मुस्करा दिये कितना मूर्ख था वह। खाली शीशों की बात करता रहा। शीशों को रोशनी समझता रहा। कितने अज्ञानी हैं हम। सिर्फ दीवारों तक रहे। अभेद होकर वह बल्ब एक था। जो आत्मा होकर सबमें सम्यक भाग से जगमगाता रहा। काश। हमारी दृष्टि, हे पावन, हे पुनीत विनायक, तुम्हारी तरह सम हो पाती,

भेदभाव से, घृणा के इस जगत से, अन्याय से, हम ऊपर उठ उस एक सत्य में, उस एक बल्ब के प्रकाश में, हम खो जाते सदा सदा के लिये। हर लक्ष्य सिद्ध होता, जीवन को एक बहुत ही सुखद ठहराव मिल जाता। हे विनायक। यही तो हम भक्त तुम्हारी पूजा करते हैं। हर शुभ कार्य से पूर्व, हे बुद्धि मताँ। हे बौद्धिक परिपक्वता के प्रतिबिम्ब, प्रतीक। हमें भी बौद्धिक पुष्टता को प्राप्त कराओ, कि हम भी एक अभियान का आवाहन कर बैठे हैं।

और विशेषता होती है गणपति के श्रीमुख में। हाथी की जो जीभ है वह भीतर को घुमती है। अन्तरमुखी होती है। यह जीवन का बीज मन्त्र है हम वाणी का प्रयोग सिर्फ बाहर के लिये करते हैं। यदि सत्संग भी सुनते हैं, कक्षाएं भी
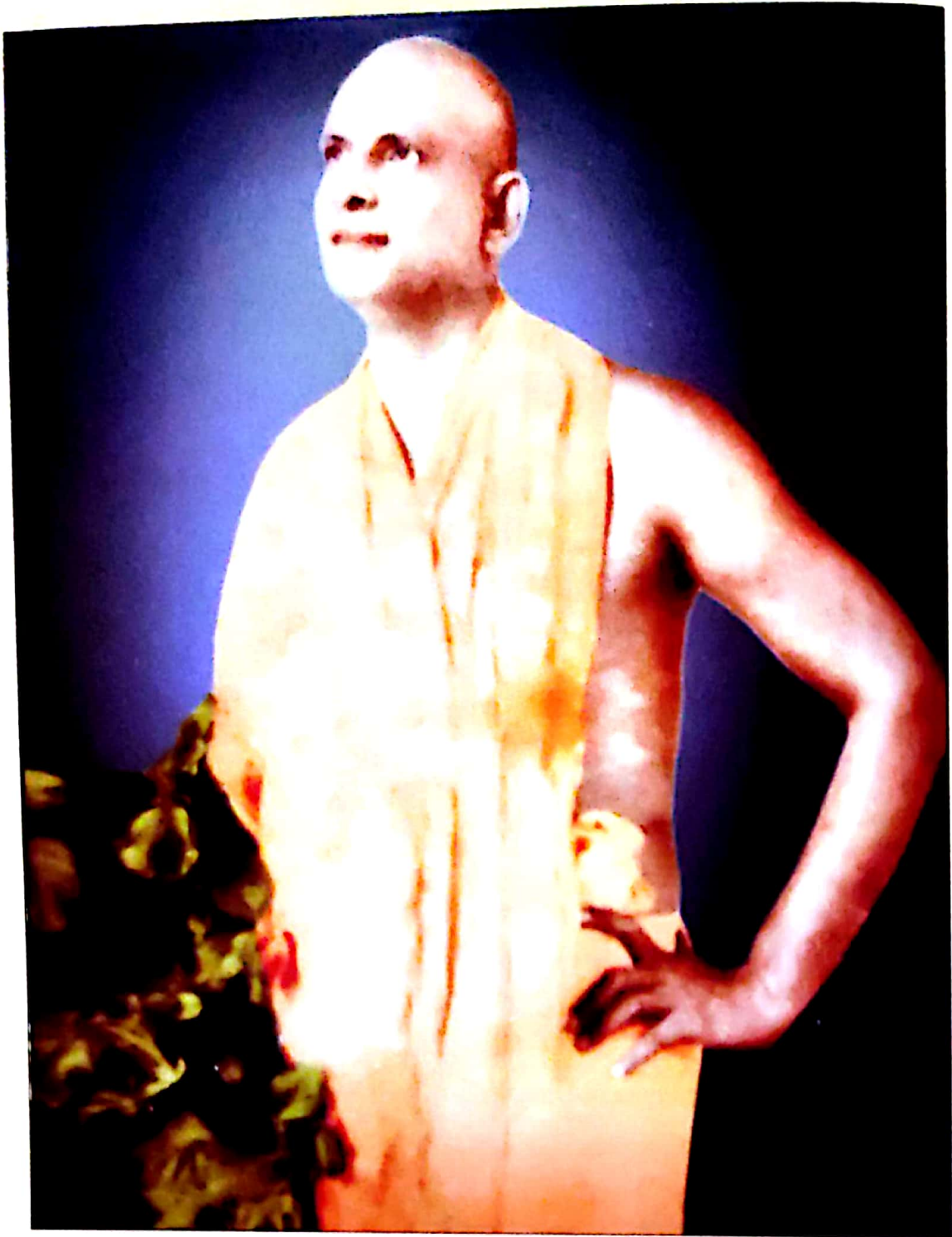
पढ़ते हैं, तो गली चौराहों पर दूसरों को उपदेश दिया करते हैं। हमारी वाणी सदा बहिर्मुखी होती है। जबकि वाणी माँ सरस्वती का दूसरा नाम है। काश जीभ हमारी भी भीतर को झुक पाये है। हम वाणी को जिह्वा को केवल बाहर ही रखते हैं। भीतर को नहीं आने देते हैं। जबकि हाथी अपनी जीभ को भीतर रखता है।

आप कल्पना करें– कि आप शतरंज खेल रहे हैं, शतरंज की फड़ लगी हुई है उस पर लकड़ी के मोहरे हैं। उन मोहरों को, जिसमें लकड़ी का हाथी भी है, घोड़ा भी है, वजीर है, पैदल है, राजा है आदि आदि। दो खिलाड़ी खेल रहे हैं, आमने सामने बैठकर। मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ कि क्या आप कह सकते हैं,

यह मोहरा गलत चल गया इसलिए मैं हार गया? हाँ अगर मोहरे जीवन्त हो उठें और उनमें बोलने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाय तो मोहरा तो कह सकता है कि खिलाड़ी का हाथ मुझे गलत चल गया और मैं फड़ से उतार दिया गया। दुश्मन के हाथों मारा गया। लेकिन खिलाड़ी कैसे कह सकता है कि मोहरा गलत चल गया। दोष उस खिलाड़ी का है। तो मित्र। जब तक तुम दूसरों को दोष दे रहे थे। उनके कारण मुझे दुख हुआ, उनके कारण मैं हारा, उनके कारण मुझे ये पीड़ायें प्राप्त हुई, जब तक तुम दूसरों के प्रति शिकायत कर रहे थे—मोहरा ही तो थे। तभी तो वह खिलाड़ी की तरह खेल सका था।

याद रखो जब भी तुम मोहरा हो, संसार खिलाड़ी है। सब खेलेंगे तुमको। जीवन में तुम कुछ भी नहीं पाओगे। आँधी में पड़े पीपल के टूटे पत्ते की तरह खड़खड़ाते फड़फड़ाते फिरोगे। जिस दिन तुमने, अपना हाथ देखना शुरू कर दिया उस दिन तुम खिलाड़ी हो क्योंकि तुम अपने दोष स्वयं देखने लगे हो। जीह्वा भीतर को चली गयी है, संसार मोहरा है। याद रहे, कि जब तुम खिलाड़ी

हो, संसार मोहरा है। जिस दिन तुम दूसरों को दोष देने लगोगे, तुम मात्र मोहरा हो। तुम्हें कभी सुख नहीं होगा, तुम कभी विनायक को नहीं जान पाओगे। इसीलिये हाथी की जिह्वा सदा अन्तरमुखी होती है, भीतर को घूमती है।

आज सनातन वाणी, जिस प्रवचन माला का आरम्भ कर रहे हैं। विनायक हम पर दया करें। हम पर कृपा करें। यह प्रवचन माला का अमृत, हमारी जिह्वा, भीतर हमको पिलाये। हम उसे पी जायें। यज्ञ की ज्वालाओं में, जो शाकल्य, सामग्रीवत गिरता है, आपूर्ति बनता है– वही ज्योति बनकर ऊपर उठता है

सनातन वाणी रूपी, इस सत्य रूपी, यज्ञ में भी जो अर्पित होगा, वही तो ज्योति बनकर ऊपर उठेगा। हम इस अमृतमय ज्ञान को, जिह्वा के द्वारा भीतर ले जायें। पीयें और गणपति की उस व्यापकता को अपने जीवन में उतार पायें। हम ऐसे अद्‌भुत सौभाग्य को प्राप्त करें। भगवान विनायक की हम इस कार्य के

शुभारम्भ में स्तुति करें। भगवान विनायक हमारे साथ हों। वे हमारे ऊपर कृपा करें।

भगवान गणपति की, विलक्षणताओं में और भी एक विलक्षण बात है, कि विनायक की सवारी चूहा है। चूहा सवारी है उनकी। आप कहेंगे कि आज जब हम हवाई जहाज पर उड़ने लगे, सुपरसोनिक प्लेन, आवाज की गति से भी तेज चलने लगे और स्पेस शटल्स पर बैठकर, स्पेस–अर्थात क्षीर–सागर, की ओर भी हम जाने लगे, उस समय आप हमें बैलगाड़ी पर भी नहीं, चूहे, पर बैठा रहे हैं? भला यह भी कोई बात है? यहां आपको एक कथा सुनाना चाहुँगा कि भगवान गणपति के भ्राता है भगवान कार्तिकेय। वे भी शिव पुत्र हैं। एक बार भगवान कार्तिकेय और भगवान गणपति में होड़ लगी कि कि हम दोनों में सबसे पहले कौन धरती की परिक्रमा करेगा। कार्तिकेय का वाहन मोर है वे मोर पर बैठकर उड़े और धरती की परिक्रमा करने लगे। गणपति का वाहन चूहा है। वे चूहे पर बैठकर उससे पूर्व शिव और पार्वती का परिक्रमा कर, कहा कि कार्तिकेय से पहले ही मैंने परिक्रमा को पूर्ण किया। मेरी जीत हुई। क्योंकि माता पिता अथवा पुनीत सुख की परिक्रमा सारे सचराचर एवं सारे ब्रह्माण्डों की परिक्रमा है। जब कार्तिकेय जी लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि विजय का फल गणपति के हाथ में है। उन्होंने भगवान रुद्र से कहा, ये तो कहीं गया भी नहीं और आपने इसके हाथ में फल दे दिया? महाशिव ने कहा–सारे बह्माण्ड का जो सबसे छोटा रूप है। वह तुम स्वयं हो। ईश्वर ने जो किताब लिखी वह जीवन्त पुस्तक है। सम्पूर्ण वेदों आदि से भी ऊपर, जिन्हें वेदों ने, श्रुतियों ने, भी गाया है। "पश्य देवस्य काव्यं नममार न जीर्यते" अर्थात इस प्रकृति को देखों इस कुदरत को देखो। यही ईश्वर का लिखा वह अद्‌भुत ग्रन्थ है जिसे वे आज भी प्रभु आत्मा होकर लिख रहे हैं। हम उसका एक अक्षर ही तो हैं। हाँ तो जो एक व्यक्ति है। वही समाज है। वही राष्ट्र है। और जो व्यक्ति है वही सचराचर है हर अक्षर अपने में पूर्ण है। गणपति ने अन्तरमुखी हो, शिव को अपने हृदय में उतार कर बन्दन कर, परिक्रमाओं को प्राप्त हो गया। गणपति विजयी रहा।

आज के सन्दर्भों में भी भगवान विनायक की यह कथा बहुत ही सार्थक और अमृतमय है। कि कार्तिकेय ने कहा– कि मेरा वाहन मोर है। इस कथा का दूसरा जो प्रतीकात्मक, उपमात्मक रूप है उसको ले रहे हैं। कार्तिकेय ने कहा कि मेरा वाहन मोर है, मैं पहला सत्य की राह पर जाने वाला मार्ग दर्शक हूँ। क्योंकि मेरा वाहन मोर है। गणपति ने कहा, नहीं तुझसे पूर्व मैं हूँ। मेरा वाहन चूहा। तो कार्तिकेय ने कहा मोर और चूहे की क्या समता हो सकती है। गणपति ने कहा तुम मोर, जो तुम्हारा वाहन अर्थात जीवन का अभियान, (जीवन का उद्देश्य ही तो वाहन है) उसे स्पष्ट करो? कार्तिकेय ने कहा, मेरा वाहन मोर है। मोर की विशेषता है कि वह हर विषैले जन्तुओं को खाता है। विष का पान करता है। तो कहा कि मेरा वाहन मोर है अर्थात् मैंने सारे समाज का विष को पीना। उनके

असत्य एवं अज्ञान को स्वयं ग्रहण करना एवं उन्हें आनन्द की अनुभूति, मोर जो नृत्य के द्वारा सब को आनन्दित करता है, ऐसी सुखद अनुभूति सबको देना मेरा वाहन है। अर्थात यह मेरे जीवन का मार्ग है, अभियान है, मिशन है, उद्देश्य है। मेरा वाहन मोर है इसलिये सत्य मेरी ही ओर है, विजय मेरी ही मानी जानी चाहिये क्योंकि पहला मार्गी मैं ही कहलाउंगा। गणपति ने कहा– नहीं, तुम नहीं, तुमसे पूर्व मेरा ही मार्ग सत्य है। क्योंकि मेरा वाहन, मिशन, उद्देश्य, अभियान चूहा है। कहा चूहे से तुम्हारा तात्पर्य क्या है? गणपति ने कहा–चूहा हर रस्सी को काट देता है और जहाँ बैठता है वहीं बिल खोदता है बाहर की हर वासनात्मक रस्सियों को काट, अपने भीतर बिल खोदने चला। यह मेरा मार्ग है। यही सत्य की राह है। अपने आपको जानना, पहचानना; वाणी को भीतर ले जाना दृष्टि को सम करना, हाथी की मस्ती को प्राप्त हो, स्थिति को प्रज्ञ हो, अपने जीवन के सत्य तक पहुँच पाना यह मेरा वाहन है जो चूहा है।

कार्तिकेय ने कहा–"यह तुम्हारी एक व्यक्तिगत उपलब्धि हो सकती है, गणपति। लेकिन तुमने सराचर की सेवा क्या की? तुमने दूसरों का असत्य, अज्ञान रूपी विष का पान करके उन्हे सौन्दर्य, सुख की अनुभूति भी तो नहीं दी? तुम्हारा मार्ग अपूर्ण है।" गणपति ने कहा मेरा ही मार्ग पूर्ण है। जब तक मैं स्वयं को नहीं जानुगाँ, जब तक मैं अपने आप को नहीं पहचानुंगा, मैं दूसरों की सेवा भी क्या करूंगा। जिसका वाहन चूहा नहीं, जिसने असत्य एवं अज्ञान की रस्सियों को काटकर, अपने अन्तर को बींधा नहीं। जो अपने अन्तर में बैठ नहीं पाया। जो भीतर बैठकर सचराचर का दर्शन नहीं कर पाया। कार्तिकेय उसकी मोर की कल्पना भी तो अधूरी है। यदि मैं डाक्टर ही न बन पाया, तो रोग का निदान क्या कर पाऊँगा? उल्टा उस मरीज (रोगियों) को तो मार ही दूंगा। इसलिये स्वयं को जानना, जीवन का पहला उद्देश्य है, इसलिए विजय मेरी ही होगी। कार्तिकेय ने कहा– स्वयं को जानने की प्रतिक्रिया में हो सकता है तुम्हे हजारों वर्ष लग जाय? तो संसार तो प्यासा रहेगा, तेरी सेवाओं के बिना। गणपति भगवान ने कहा–"जो आज मर रहे हैं वे कल क्या उत्पन्न नहीं होंगे। कार्तिकेय, जब तक मैं अपने आपको नहीं जानता मैं दूसरों को क्या जानूंगा? और जब तक संशय रहित होकर अपने आपको नहीं पाया मेरी सराचर सेवा मेरी एक मिथ्याभिमान ही तो है। मैं तुम्हारी बात नहीं स्वीकारता हूँ। सत्य का पहला चरण, जीवन की राह का कुंवारा कदम, जो पहला होगा। वह बाहर नहीं भीतर होगा। जितने कदम भीतर चलूं उतने कदम बाहर भी आगे बढ़ूं। यह बात तो समझ में आती है, लेकिन तुम कहो चूहा वाहन के बिना मोर की भी कोई उपयोगिता है। उसे मैं नहीं स्वीकारता। इसलिये प्रथम चरण जो भी होगा, ईश्वर की राह में वह गणपति ही होगा।

तब महाविष्णु प्रकट हुये, और उन्होंने दोनों के भागों की सराहना की, गणपति के योग को, अपने आप को उन्होंने कृष्ण रूप में अवतरित होकर अपने

हृदय में रखा। जिसका अमृतमय उपदेश गीता में है, जो गणपति ही है। वो अर्जुन को दिया। कार्तिकेय के वाहन मोर को नारायण ने माथे से लगा लिया कि–''मन में ध्यान हाथ में सेवा'' परन्तु संशय रहित रूप से यह भी स्पष्ट कर दिया कि गणपति ही प्रथम है। कार्तिकेय उपरान्त होगा। क्योंकि स्वयं को जानने की प्रक्रिया में यदि समाज सेवा का विचार, दोनों इक्कठे खड़े रहे तो एक दन्त न होने से, जीवन का कोई भी लक्ष्य कोई भी स्तर, तुम नहीं पा पाओगे। इसीलिये सनातन वाणी कार्यक्रम में, हम भगवान विनायक की स्तुति करें। भगवान गणपति, को जो विचारों की पूर्णता के प्रतीक हैं और जो अन्तर का जगत हैं और उस सत्य को पाने के लिए हम एकाग्र होकर, समदृष्टि में, अर्थात उसी आत्मा रूपी, ब्रह्म रूपी, उस बल्ब को सभी में देखते हुए, भगवान विनायक को, अपने हृदय में उतारें और उस पावन अभियान का श्रीगणेश करें। भगवान विनायक को अपने इस अभियान का मुख्य मानकर, जीवन को ही सनातन वाणी, एक अभियान जानकर, हम अपने हृदय में धारण करें, यही भगवान विनायक का, निर्मल ज्योतिर्मिय, अमृतमय स्वरूप है। भगवान विनायक ने जब कहा था–''कि जब तक मैंने अपने आपको न जाना, मैं संसार की सेवा क्या करूंगा?'' आज यही हमारे दुख और पीड़ा का मूल कारण है, कि जिन्होंने हमारे सद्ग्रन्थ न जाने; एक हजार साल के लम्बे गुलामी के अन्तरालों में, वह सत्य रूपी अंगारों पर, गुलामी की धूल की परतें चढ़ती चली गयी, उस धूल को ही अंगार मानकर हमारे तथाकथित समाज सुधारक एवं नेताओं ने, तथा कथित विचारकों ने, जो भ्रम फैलायें हैं। काश! ''वे भगवान विनायक के स्वरूप को अपने जीवन में उतार पाये होते, जो आज हर वाणी सनातन वाणी होती।''

सनातन शब्द का अर्थ है नित्य, अजर, अमर, अविनाशी, जो नित्य, अजर, अमर, और अविनाशी है अर्थात वे शब्द जो कभी मरते नहीं। वे शब्द जो सन्देह से परे हैं। जिनमें कभी किसी प्रकार का संशय नहीं होता। वे ही सनातन वाणी, के रूप में माने जाते हैं। उन्हीं का नाम सरस्वती है। भगवान विनायक की, गणपति की, पूजा के बाद, हम माँ सरस्वती की और गुरु के पावन चरणों की पूजा करते हैं। गुरु–उसे कहते हैं, जो जीवन के गुरुत्व को धारण कराने वाले, उस सत्य को धारण करा दे।

आचार्य और गुरु में भेद होता है। आचार्य कहते हैं, जो श्रेष्ठ आचरण को दे। भीतर और बाहर के। वे पावन आचार्य हैं, और गुरु कहते हैं जो अन्तर के तम को मिटा, असत्य–अज्ञान को नष्ट कर, सत्य की राह दे दे। जो ईश्वर की राह में मेरे संकल्प का संबल हो जाय। जिसके प्रति समर्पित होकर, मैं सबसे पहले समर्पित होना सीखूँ। वे पावन गुरु–जन, जो आँखों की रोशनी बने, जो अन्तर की ज्योतिर्मिय राह का पालन करायें। हम ऐसे गुरु जन के चरणों में नतमस्तक हों। उनकी स्तुति गावें–कि वे हम पर कृपा, हम पर दया करें। हमें शक्ति साहस दें

और जो गूढ़ ब्रह्म के रहस्य हैं उन्हें अपनी पावन सनातन वाणी के द्वारा, हम पर स्पष्ट करते चलें। समर्पण, ही जीवन का मूल है। जब तक हम समर्पित नहीं हो पाते, हम कुछ भी नहीं पाते। जिस अभियान को हम समर्पित नहीं, हम उन उद्देश्यों के साथ तद्रूप (आईडेन्टीफाई) भी नहीं कर पाते। जान भी नहीं पाते। वह समर्पण जब तक अधूरा रहता है, हमें किसी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। अक्सर लोग सोचते हैं समर्पण का अर्थ, हीन भावनाओं से ग्रसित होना है। नहीं। जो पेड़ झुकते नहीं, वे आंधियों के द्वारा उखाड़ दिये जाते हैं। जो पेड़ अपने फलों से झुकते नहीं, उनके फल नष्ट हो जाते हैं। झुकना तो एक प्रक्रिया है। आप किसी के आगे नहीं, आप अपने ही अन्तर में झुक रहे हैं। जैसे नाटक से पूर्व का पूर्वाभ्यास होता है। झुक वही सकता है जो अब काँच नहीं, खिड़की के शीशे नहीं, उस ब्रह्म रूपी बल्ब को देख रहा है। वही झुक सकता है।

महाविष्णु चतुर्भुज हैं। उनकी चारों भुजाओं में शख, चक्र, गदा और पद्म हैं, यही किसी भी अभियान पर जा रहें है, सत्य को पाने के पिपासु के चार शुभ लक्षण हैं। शंख के सदृश्य मंगलमय वाणी जिसकी, दृष्टि जिसकी सुदर्शन है, संकल्ह जिसका गदा है और जो कमल की कोमलता लिए, प्राणी–मात्र के चरणों में– एक मुझको देखता हुआ, समर्पित हो गया है। महाविष्णु कहते हैं– कि यह ही मेरा भक्त है।

भगवान–विनायक और हमारे पावन गुरु हम पर दया करें, हम पर कृपा करें। विनायक की स्तुति के बाद, तुलसीकृत मानस में भी, भगवान तुलसी, गुरु के चरण पद कमल की पूजा करते हैं। जब तक मेरे जीवन में आदर्श नहीं होगा मैं अपने आपको आईडेन्टीफाई किससे करूंगा? जब मैं अपने आपको जगत से आइडेन्टीफाई करता हूँ, तदात्म करता हूँ तो हर टूटे खिलौने के साथ मैं टूटता रहता हूँ। गुरु अथवा भगवान की पूजा, मूर्ति की पूजा में भी, हम किसी की पूजा नहीं, विचारों के द्वारा अपने में एक नया व्यक्तित्व उत्पन्न करने की उस महान मनोवैज्ञानिक कल्पना को ही साकार करते हैं।

आप कल्पना करें, कि आप एक विशाल पर्वत के सामने खड़े हैं। पर्वत बहुत ऊंचा है आप बहुत छोटे हैं। फिर आप रस्सी फेंककर, उस पहाड़ पर चढ़ने लगते हैं। पर्वतारोहरण करने लगते हैं। एक समय वह भी आता है कि आप उस पर्वत से भी ऊँचे हैं। क्यों? उसके सबसे ऊँची चोटी के ऊपर खड़े हुए हूँ। गुरु, ईश्वर एवं मूर्ति के रूप में विचारों का, सद्विचारों का, उन्नत विचारों का, एक विशाल पर्वत खड़ा करता हूँ। समर्पण की रस्सी से सद्विचारों रूपी उस गुरुरूपी उस पर्वत पर, धीरे–धीरे चढ़ने लगता हूँ। अच्छी भावनाएं, सुदृढ़ संकल्प, महान प्रेरणायें और कल्पनायें, मेरे व्यक्तित्व को, पर्वताकार तद्रूप बनाती चलती हैं। यही गुरु की चरणों की स्तुति है। क्योंकि उनके पावन चरणों में जब हम झुकते हैं तो हम काँच के खिड़कियों के नहीं, कमरे के उस बल्ब के आगे हम झुकते हैं

और विचारों के उस विशाल पर्वत को, "शंख के सदृश्य मंगलमय वाणी, दृष्टि का सुदर्शन, सु=अलौकिक, दृश्य का सब में दर्शन, संकल्ल की गदा गुरु ही बनते हैं। क्योंकि कई बार मेरी लिप्सायें एवं वासनायें मुझ अबोध अज्ञानी को, जगत में संकल्पहीन बनाकर लौटा ले जाती हैं। परन्तु जितना पृष्ट समर्पण का भाव गुरु की ओर होगा, तो उसके आदेश और उपदेश की मैं अवहेलना नहीं कर सकता। क्योंकि गुरु का आदेश है– यह संकल्प की गदा बन जाता है। तो अज्ञान एवं अबोधता के स्तर पर खड़ा भक्त भी संकल्प की पुष्ट गदा पर सद्विचारों के उस ज्योर्तिमय उन्नत, अलौकित पर्वत पर चढ़, उस पर्वत से भी ऊंचा, अपने व्यक्तित्व को बना ले जाता है।